Cosmos Multidisciplinary Research E-Journal
Online Available at www.cmrj.in
Recognized International Peer Reviewed Journal
Impact Factor 5.69
ISSN No. 2456-1665

हिंदी साहित्य और सिनेमा का अंतर्संबंध

प्रा.डॉ.शेख शरफोद्दीन फक्रोद्दीन
हिंदी विभागाध्यक्ष सहयोगी प्रोफेसर
कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय,
बदनापूर, जि. जालना (महाराष्ट्र)

भारतीय साहित्य और भारतीय सिनेमा का विकास लगभग समान कालखंड में आरंभ हुआ। वर्ष 1913 भारतीय सांस्कृतिक इतिहास में विशेष महत्त्व रखता है। इसी वर्ष एक ओर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर को उनकी अमर कृति गीतांजलि के लिए साहित्य का नोबेल पुरस्कार प्राप्त हुआ, तो दूसरी ओर दादासाहब फाल्के की फिल्म राजा हरिश्चंद्र ने भारतीय सिनेमा की आधारशिला रखी। जहाँ उस समय भारतीय साहित्य विश्व स्तर पर प्रतिष्ठा अर्जित कर रहा था, वहीं भारतीय सिनेमा अपनी पहचान बनाने की प्रक्रिया में था। आज एक शताब्दी से अधिक समय बाद स्थिति यह है कि भारतीय, विशेषकर हिंदी सिनेमा, वैश्विक स्तर पर व्यापक लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है, जबकि हिंदी साहित्य का पाठक वर्ग अपेक्षाकृत सीमित हुआ है और वह अनेक बार अपने ही दायरे में सिमटता दिखाई देता है।

इस परिवर्तन के पीछे कई कारण हैं। सिनेमा ने समय के साथ अपनी विषयवस्तु, तकनीक और प्रस्तुति शैली में निरंतर परिवर्तन करते हुए दर्शकों की बदलती रुचियों को अपनाया, जबकि हिंदी साहित्य का एक बड़ा वर्ग लंबे समय तक पारंपरिक दृष्टिकोण से जुड़ा रहा। परिणामस्वरूप सिनेमा का प्रभाव लगातार बढ़ता गया, जबकि साहित्य का जनसंपर्क अपेक्षाकृत कम होता गया।

हिंदी साहित्य और सिनेमा के संबंधों का प्रारंभिक चरण साहित्यिक कृतियों के फिल्म रूपांतरण से जुड़ा रहा। प्रारंभ में अनेक प्रसिद्ध उपन्यासों और कहानियों पर फिल्में बनाई गईं; किंतु अधिकांश फिल्में व्यावसायिक दृष्टि से अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर सकीं। इसके अतिरिक्त अनेक साहित्यकार सिनेमा को अपनी साहित्यिक गरिमा से कमतर माध्यम मानते थे। वे अपनी रचनाओं पर फिल्म बनने की इच्छा तो रखते थे, परंतु फिल्म निर्माण की व्यावसायिक आवश्यकताओं और रचनात्मक स्वतंत्रता के बीच संतुलन स्थापित नहीं कर पाते थे।

इस संदर्भ में प्रेमचंद का अनुभव अत्यंत उल्लेखनीय है। उनकी कहानी पर आधारित फिल्म मिल मजदूर के निर्माण के दौरान कथा में किए गए परिवर्तनों से वे संतुष्ट नहीं थे। उनका मानना था कि फिल्म निर्माण में निर्देशक की भूमिका सर्वोपरि होती है और लेखक की मौलिक दृष्टि कई बार पीछे रह जाती है। बाद में सेवासदन और रंगभूमि जैसी कृतियों पर भी फिल्में बनीं, किंतु प्रेमचंद अपने साहित्य के फिल्मी रूपांतरण से पूर्णतः संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने यह भी स्वीकार किया कि सिनेमा की दुनिया साहित्य से भिन्न है, जहाँ मनोरंजन और व्यावसायिकता को अधिक महत्त्व दिया जाता है तथा लेखक को अनेक बार समझौता करना पड़ता है।

1936 में प्रेमचंद के निधन के बाद भगवतीचरण वर्मा, उपेंद्रनाथ अश्क, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' तथा अमृतलाल नागर जैसे अनेक साहित्यकार फिल्म जगत से जुड़े, किंतु अधिकांश को अपेक्षित सफलता नहीं मिली।

यद्यपि भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास चित्रलेखा पर दो बार फिल्में बनीं और पहली फिल्म सफल भी रही, फिर भी उन्हें फिल्म उद्योग में स्थायी पहचान प्राप्त नहीं हो सकी।

साठ के दशक के बाद गुलशन नंदा ने साहित्य और सिनेमा के बीच एक नया सेतु स्थापित किया। उनके उपन्यासों और कहानियों पर आधारित अनेक फिल्में अत्यंत लोकप्रिय हुईं। कई बार पहले फिल्म प्रदर्शित होती थी और बाद में उसी कथा का उपन्यास प्रकाशित किया जाता था। इसके बावजूद हिंदी साहित्य की मुख्यधारा ने उन्हें अपेक्षित साहित्यिक सम्मान नहीं दिया। यह स्थिति इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि लोकप्रिय साहित्य को लंबे समय तक गंभीर साहित्य से अलग दृष्टि से देखा गया।

सत्तर के दशक में राही मासूम रज़ा, धर्मवीर भारती, राजेंद्र यादव, मन्नू भंडारी और विशेष रूप से कमलेश्वर ने साहित्य तथा सिनेमा के बीच सफल समन्वय स्थापित किया। कमलेश्वर ने नई कहानी आंदोलन में महत्वपूर्ण योगदान देने के साथ-साथ फिल्मों और दूरदर्शन के लिए भी प्रभावशाली पटकथाएँ एवं संवाद लिखे। उन्हें फिल्मफेयर पुरस्कार के साथ साहित्य अकादमी सम्मान भी प्राप्त हुआ। उनकी सफलता का प्रमुख कारण यह था कि वे साहित्य की संवेदनशीलता के साथ-साथ सिनेमा की भाषा और उसकी व्यावसायिक आवश्यकताओं को भी भली-भाँति समझते थे।

वास्तव में साहित्य और सिनेमा दो भिन्न माध्यम हैं। साहित्य मुख्यतः पाठ और कल्पना पर आधारित होता है, जबकि सिनेमा दृश्य, ध्वनि और तकनीक के माध्यम से कथा को प्रस्तुत करता है। इसलिए साहित्यिक रचना का सफल फिल्म रूपांतरण तभी संभव है, जब लेखक या निर्देशक दोनों माध्यमों की प्रकृति और आवश्यकताओं को समान रूप से समझे।

इस तथ्य को ख्वाजा अहमद अब्बास और राज कपूर के उदाहरण से भी समझा जा सकता है। अब्बास उत्कृष्ट लेखक थे, किंतु उनके निर्देशन में बनी फिल्में अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर सकीं। दूसरी ओर राज कपूर ने उन्हीं की कहानियों को प्रभावशाली सिनेमाई प्रस्तुति देकर दर्शकों का व्यापक प्रेम प्राप्त किया। इससे स्पष्ट होता है कि सफल फिल्म निर्माण केवल श्रेष्ठ कथा पर नहीं, बल्कि उसे प्रभावशाली दृश्य रूप देने की क्षमता पर भी निर्भर करता है।

गुलज़ार ने भी साहित्य और सिनेमा के बीच संतुलन का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने एक ओर गहन संवेदनशील कविताएँ और नज़्में लिखीं, तो दूसरी ओर लोकप्रिय फिल्मों के लिए जनसामान्य की पसंद के अनुरूप गीत भी रचे। उनकी सफलता का आधार यही था कि उन्होंने साहित्यिक गरिमा और लोकप्रिय संस्कृति दोनों को समान महत्त्व दिया।

समकालीन समय में हिंदी साहित्य और सिनेमा के संबंध पहले की अपेक्षा अधिक सशक्त दिखाई देते हैं। अनेक युवा लेखक फिल्म, वेब सीरीज़ और ओटीटी मंचों के लिए लेखन कर रहे हैं। मनोज मुंतशिर, कुमार विश्वास, सत्य व्यास, नीलोत्पल मृणाल, नवीन चौधरी और दिव्य प्रकाश दुबे जैसे रचनाकारों की कृतियाँ या तो फिल्म एवं वेब सीरीज़ का रूप ले चुकी हैं अथवा उन पर कार्य चल रहा है। इससे यह स्पष्ट होता है कि आज साहित्य और सिनेमा के बीच संवाद पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक और सकारात्मक हुआ है।

अंततः कहा जा सकता है कि हिंदी साहित्य और सिनेमा का संबंध प्रारंभिक दौर में अनेक चुनौतियों से घिरा रहा, किंतु वर्तमान समय में दोनों माध्यम एक-दूसरे के पूरक बनते दिखाई दे रहे हैं। यदि साहित्यकार सिनेमा की भाषा और उसकी रचनात्मक आवश्यकताओं को समझते हुए आगे बढ़ें तथा फिल्मकार साहित्य की गहराई और संवेदनशीलता का सम्मान करें, तो भविष्य में दोनों के बीच यह संबंध और अधिक सुदृढ़ एवं समृद्ध हो सकता है।

हिंदी सिनेमा ने केवल हिंदी साहित्य ही नहीं, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं की उत्कृष्ट साहित्यिक कृतियों को भी अपनी फिल्मों का आधार बनाया है। परिणामस्वरूप अनेक साहित्यिक रचनाएँ व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचीं और उन्हें नई लोकप्रियता प्राप्त हुई। इस प्रकार साहित्य ने सिनेमा को सशक्त कथानक प्रदान किए, वहीं सिनेमा ने साहित्य को जन-जन तक पहुँचाकर उसकी लोकप्रियता और प्रभाव को कई गुना बढ़ाया। प्रेमचंद, भगवतीचरण वर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु, शरतचंद्र चट्टोपाध्याय, रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा आर. के. नारायण जैसे अनेक साहित्यकारों की कृतियाँ फिल्म रूपांतरण के माध्यम से अमर हो गईं।

साहित्य विचारों, भावनाओं और सामाजिक यथार्थ को शब्दों में अभिव्यक्त करता है, जबकि सिनेमा उन्हीं विचारों और संवेदनाओं को दृश्य-श्रव्य माध्यम से जीवंत रूप प्रदान करता है। साहित्य कल्पना और अनुभूति का संसार रचता है, वहीं सिनेमा उसे सजीव चित्रों, संवादों और अभिनय के माध्यम से दर्शकों तक पहुँचाता है। इस प्रकार दोनों माध्यम एक-दूसरे के पूरक हैं और समाज की चेतना के निर्माण में समान रूप से महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अनेक साहित्यिक कृतियाँ, जो प्रारंभ में सीमित पाठक वर्ग तक ही पहुँच सकी थीं, सिनेमा के माध्यम से व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचीं। साहित्य सामान्यतः शिक्षित वर्ग तक सीमित रहता है, जबकि सिनेमा शिक्षित और अशिक्षित दोनों वर्गों को समान रूप से प्रभावित करता है। प्रसिद्ध सिने समीक्षक मनोज श्रीवास्तव 'मोक्षेंद्र' के अनुसार, फिल्मों में समाज के सभी वर्गों, परिस्थितियों और जीवनानुभवों का चित्रण होने के कारण वे प्रत्येक व्यक्ति को सहज रूप से आकर्षित करती हैं। इसलिए साहित्य के फिल्म रूपांतरण से उसकी पहुँच और प्रभाव दोनों में वृद्धि होती है।

सिनेमा समाज का दर्पण भी है और समाज का मार्गदर्शक भी। यह मानव जीवन के विविध पक्षों—किसान, मजदूर, गरीब, बेरोजगार, उपेक्षित वर्ग, स्त्री, दलित तथा आदिवासी समाज—को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करता है। साथ ही, समाज में व्याप्त विसंगतियों, शोषण, अन्याय तथा मानवीय संघर्षों को भी उजागर करता है। यद्यपि कुछ फिल्मों में जनसाधारण की समस्याओं का मनोरंजन के रूप में चित्रण भी हुआ है, फिर भी समग्र रूप में सिनेमा ने सामाजिक चेतना को विकसित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

भारतीय संस्कृति, परंपराओं, रीति-रिवाजों, लोकजीवन, खान-पान, वेशभूषा तथा सामाजिक मूल्यों के संरक्षण और प्रसार में भी सिनेमा की उल्लेखनीय भूमिका रही है। इस संदर्भ में विदुषी पूजा सेठी का मत है कि इक्कीसवीं शताब्दी में सिनेमा विश्व का सबसे प्रभावशाली माध्यम बन चुका है, जिसने मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित किया है। वास्तव में, आज सिनेमा मनोरंजन के साथ-साथ शिक्षा, संस्कृति और सामाजिक परिवर्तन का भी प्रभावी माध्यम बन गया है।

भारतीय सिनेमा का इतिहास बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से आरंभ होता है। दादा साहेब फाल्के द्वारा निर्देशित 'राजा हरिश्चंद्र' (1913) भारत की पहली पूर्ण लंबाई की मूक फीचर फिल्म थी, जिसे भारतीय सिनेमा की आधारशिला माना जाता है। इसके पश्चात अर्देशिर ईरानी के निर्देशन में 'आलम आरा' (1931) भारत की पहली बोलती (टॉकी) फिल्म बनी, जिसने भारतीय सिनेमा में ध्वनि युग का सूत्रपात किया। भारत की पहली स्वदेशी रंगीन फिल्म 'किसान कन्या' (1937) थी, जिसका निर्माण भी अर्देशिर ईरानी ने किया।

सामाजिक विषयों पर आधारित 'अछूत कन्या' (1936) भारतीय सिनेमा की एक महत्वपूर्ण फिल्म मानी जाती है, जिसने जातिगत भेदभाव जैसे गंभीर सामाजिक प्रश्न को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया। सआदत हसन मंटो ने अपने फिल्मी जीवन में अनेक फिल्मों के लिए पटकथा, संवाद और कहानी लेखन किया, किन्तु 'आलम आरा' अथवा 'अछूत कन्या' के संवाद उन्होंने नहीं लिखे थे। यह एक प्रचलित तथ्यात्मक भ्रम है। मंटो का योगदान मुख्यतः 1940 के दशक के हिंदी-उर्दू सिनेमा में पटकथा और संवाद लेखन के क्षेत्र में रहा।

इस प्रकार भारतीय सिनेमा ने मूक फिल्मों से लेकर डिजिटल और वैश्विक सिनेमा तक एक लंबी और गौरवशाली यात्रा तय की है। तकनीकी विकास, सशक्त अभिनय, प्रभावी पटकथा और साहित्यिक रूपांतरणों के कारण हिंदी सिनेमा आज राष्ट्रीय ही नहीं, बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी विशिष्ट पहचान बना चुका है। साहित्य और सिनेमा का यह परस्पर संबंध भारतीय समाज, संस्कृति और मानवीय संवेदनाओं को समृद्ध करने में निरंतर महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है।

हिंदी साहित्य में निहित गहन एवं जटिल विचारों को सिनेमा ने दृश्य-श्रव्य माध्यम के द्वारा सरल, प्रभावशाली और जनसुलभ रूप में प्रस्तुत किया है। परिणामस्वरूप साहित्य की वे रचनाएँ भी व्यापक जनसमुदाय तक पहुँच सकीं, जिनकी पहुँच पहले केवल सीमित पाठक वर्ग तक थी। इस प्रकार सिनेमा ने साहित्य के विचारों, संवेदनाओं और सामाजिक सरोकारों को जन-जन तक पहुँचाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भगवतीचरण वर्मा के प्रसिद्ध उपन्यास ‘चित्रलेखा’ पर दो बार फिल्में बनाई गईं—पहली बार वर्ष 1941 में और दूसरी बार 1964 में। यह उपन्यास पाप-पुण्य, नैतिकता, वैराग्य और जीवन-दर्शन जैसे गहन दार्शनिक प्रश्नों पर आधारित है। दोनों फिल्म रूपांतरणों ने इन जटिल दार्शनिक अवधारणाओं को दृश्य माध्यम के द्वारा सरल और प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया, जिससे सामान्य दर्शक भी उनके मूल संदेश को सहजता से समझ सके।

चंद्रधर शर्मा गुलेरी की अमर कहानी ‘उसने कहा था’ पर भी फिल्म का निर्माण किया गया। यह कहानी प्रेम, त्याग, कर्तव्य और मानवीय संवेदनाओं का अत्यंत मार्मिक चित्रण करती है। फिल्म ने मूल कहानी की भावनात्मक गहराई और मानवीय मूल्यों को व्यापक दर्शक वर्ग तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया तथा साहित्य की संवेदनशील अभिव्यक्ति को दृश्य रूप में साकार किया। भारतेंदु हरिश्चंद्र के प्रसिद्ध नाटक ‘अंधेर नगरी’ पर आधारित फिल्म ‘अंधेर नगरी चौपट राजा’ ने व्यंग्य और हास्य के माध्यम से तत्कालीन शासन व्यवस्था, सामाजिक विसंगतियों तथा भ्रष्टाचार पर तीखा प्रहार किया। इस फिल्म ने भारतेंदु के सामाजिक संदेश को अधिक व्यापक स्तर पर पहुँचाया और यह स्पष्ट किया कि साहित्यिक व्यंग्य सिनेमा के माध्यम से और भी प्रभावशाली बन सकता है। आज भी यह रचना अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए है। पंडित बद्रीनारायण भट्ट ‘सुदर्शन’ की अनेक कहानियाँ भी फिल्म रूपांतरण का आधार बनीं। उनकी रचनाओं में मानवीय संवेदनाएँ, नैतिक मूल्य और सामाजिक आदर्श प्रमुख

रूप से व्यक्त हुए हैं। सिनेमा ने इन कथाओं को जीवंत रूप देकर उनके संदेश को समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँचाया। इस प्रकार साहित्य पर आधारित फिल्मों ने समाज की समस्याओं, मानवीय मूल्यों और सांस्कृतिक चेतना को केवल शिक्षित वर्ग तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि सामान्य जनमानस तक भी प्रभावी ढंग से पहुँचाया।

इस संदर्भ में कुसुम अंचल का मत है कि "फिल्मों के प्रतिमान भी देश की सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं से प्रभावित होते हैं।" वास्तव में भारतीय सिनेमा समय-समय पर सामाजिक एवं राजनीतिक परिवर्तनों का सशक्त दर्पण रहा है। महात्मा गांधी के व्यक्तित्व और उनके अहिंसक स्वतंत्रता आंदोलन ने भारतीय तथा विश्व सिनेमा दोनों को गहराई से प्रभावित किया। 'गांधी' (1982) जैसी विश्वप्रसिद्ध फिल्म ने गांधीजी के जीवन, सत्य, अहिंसा और सत्याग्रह के सिद्धांतों को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रतिष्ठित किया। इसी प्रकार 'लगे रहो मुन्ना भाई' (2006) ने गांधीवादी विचारधारा को समकालीन संदर्भों में सरल, रोचक और प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत कर नई पीढ़ी को गांधी के विचारों से पुनः परिचित कराया।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के महान क्रांतिकारी शहीद भगत सिंह के जीवन पर भी अनेक महत्वपूर्ण फिल्में बनी हैं। 'शहीद' (1965), 'द लीजेंड ऑफ भगत सिंह' (2002) तथा '23 मार्च 1931: शहीद' (2002) जैसी फिल्मों ने उनके अदम्य साहस, देशभक्ति और बलिदान को प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया। इन फिल्मों ने भारतीय युवाओं में राष्ट्रीय चेतना और देशप्रेम की भावना को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

भारत-विभाजन की त्रासदी साहित्य और सिनेमा दोनों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण विषय रही है। 'गर्म हवा' (1973), 'तमस' (1988) तथा 'पिंजर' (2003) जैसी फिल्मों ने विभाजन के कारण उत्पन्न विस्थापन, सांप्रदायिक हिंसा, मानवीय पीड़ा और सामाजिक विघटन का अत्यंत संवेदनशील चित्रण किया। इन फिल्मों ने इतिहास के उस दर्दनाक अध्याय को जीवंत रूप में प्रस्तुत कर दर्शकों को उसकी वास्तविकता से परिचित कराया।

समकालीन सामाजिक समस्याओं और जनआंदोलनों ने भी भारतीय सिनेमा को निरंतर प्रभावित किया है। जातिगत भेदभाव, दहेज प्रथा, लैंगिक असमानता, महिला सशक्तिकरण तथा सामाजिक न्याय जैसे विषयों पर आधारित फिल्मों ने समाज में सकारात्मक परिवर्तन की आवश्यकता को रेखांकित किया। 'बैंडिट क्वीन' (1994), 'मासूम' (1983) तथा 'आखिर क्यों' (1985) जैसी फिल्मों ने महिलाओं के अधिकारों, सामाजिक विषमताओं तथा न्याय की आवश्यकता को प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त किया।

स्पष्ट है कि सिनेमा सदैव समाज की संवेदनाओं, संघर्षों और परिवर्तनों का सशक्त माध्यम रहा है। स्वतंत्रता आंदोलन, विभाजन की त्रासदी, राजनीतिक परिवर्तन अथवा समकालीन सामाजिक चुनौतियाँ—इन सभी को सिनेमा ने अपनी कथावस्तु और पात्रों के माध्यम से जीवंत रूप प्रदान किया है। इस प्रकार सिनेमा केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, सांस्कृतिक संरक्षण और जनजागरण का प्रभावी साधन भी है।

संदर्भ ग्रंथ

1 साहित्य और सिनेमा में आम आदमी-मनोज श्रीवास्तव मोक्षेंद्र, आजकल, जनवरी, 2015
2. सिनेमा और साहित्य-पूनम सेठी
3. हिंदी का वैश्विक परिदृश्य- सं० गिरीश्वर मिश्र